[2008] 1 उम. नि. प. 229

प्रदीप कुमार उर्फ प्रदीप कुमार वर्मा

बनाम

बिहार राज्य और एक अन्य

17 अगस्त, 2007

न्यायमूर्ति डा. अरिजीत पसायत और न्यायमूर्ति डी. के. जैन

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 227 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 – धारा 376 और 406] – उन्मोचन – अभियोक्त्री द्वारा इस संबंध में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराना कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने विवाह का मिथ्या वायदा करते हुए उससे संभोग किया था तथा एक मंदिर में उससे विवाह करते हुए एक करार भी किया था – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अभियोक्त्री से संभोग करने और विवाह का कोई वायदा उससे किए जाने का इनकार करना तथा उन्मोचन के लिए आवेदन देना – विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा उन्मोचन आवेदन खारिज किया गया – यह अभिनिर्धारित किया गया कि यद्यपि धारा 376 और 406 के अधीन अपराध साबित नहीं हुआ है अपितु दंड संहिता की धारा 415 और 493 मामले पर लागू होती है – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभिकथित अपराध साबित न होना – उच्च न्यायालय को इसके समक्ष प्रस्तुत दलीलों पर विचार करना चाहिए था तथा मामले पर धारा 227 लागू नहीं होती – मामले के गुणागुण पर कोई मत व्यक्त किए बिना उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किया गया था और नए सिरे से विचार किए जाने के लिए इसे वापस भेजा गया ।

प्रस्तुत मामले में 2004 के सेशन विचारण संख्या 280 में विद्वान अपर सेशन न्यायाधीश, फ़ास्ट ट्रेक न्यायालय संख्या-3, बक्सर के निर्णय की शुद्धता के प्रश्न के संबंध में पटना उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए आदेश को चुनौती दी गई है जिसके अधीन उन्मोचन के लिए अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया आवेदन नामंजूर किया गया था । अपील का तद्नुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – इसके अतिरिक्त दंड संहिता, 1860 की धारा 406 के घटक पूर्ण रूप से किसी प्रकार लागू नहीं होते हैं । दंड प्रक्रिया संहिता,

1973 की धारा 164 के अधीन अभिलिखित किए गए कथन का सादा पठन करने पर यह दर्शित होता है कि धारा 406 किसी प्रकार लागू नहीं होती है । दंड संहिता की धारा 406 आपराधिक न्यास भंग के लिए दंड के संबंध में है । धारा 405 में अभिव्यक्ति "आपराधिक न्यास भंग" को परिभाषित किया गया है । यह केवल सम्पत्ति के सौंपे जाने या सम्पत्ति पर अख्तियार सौंपे जाने के संबंध में है । इस मामले में कोई सम्पत्ति का किसी प्रकार से सौंपे जाने का कोई अभिकथन नहीं किया गया है और इसलिए धारा 406 इस मामले में लागू नहीं होती है । उच्च न्यायालय को अपीलार्थी द्वारा किए गए निवेदनों पर चर्चा किए बिना ही आवेदन को संक्षिप्ततः नामंजूर नहीं करना चाहिए था । राज्य की ओर से विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि यद्यपि दंड संहिता, 1860 की धारा 376 और 406, प्रथमदृष्टया यह प्रतीत होता है कि लागू नहीं होती, तब भी मामला दंड संहिता की धाराओं 415 और 493 के अधीन आता है । इत्तिलाकर्ता की ओर से विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी है कि चूंकि विवाह के बहाने से और आहत से छल करने के द्वारा अभियुक्त ने उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए थे, यह नहीं कहा जा सकता है कि सम्मति का घटक वहां है और धारा 376 सही तौर पर लागू की गई है । राज्य और इत्तिलाकर्ता की ओर से विद्वान काउन्सेलों ने यह कथन किया है कि आरोपों में विचारण के दौरान परिवर्तन किया जा सकता है और हस्तक्षेप किए जाने के लिए कोई गुंजाइश नहीं है । अपीलार्थी द्वारा की गई दलीलों की स्वीकार्यता या अन्यथा के संबंध में कोई मत अभिव्यक्त करना उपयुक्त नहीं होगा । जैसीकि राज्य की ओर से विद्वान काउन्सेल द्वारा सही तौर पर दलील दी गई है कि दंड संहिता, 1860 की धारा 376 और 406 प्रथमदृष्टया, यह प्रतीत होता है, कि किसी प्रकार लागू नहीं होती । उच्च न्यायालय के लिए यह उपयुक्त होता कि वह स्वीकार्यतः विभिन्न दलीलों पर चर्चा करता और उनकी स्वीकार्यता पर विचार करता । दृश्यमान रूप से ऐसा नहीं किया गया है । यह एक ऐसा मामला नहीं है जहां आवेदन एक संक्षिप्त रीति में खारिज किया जाए । (पैरा 6, 7 और 8)

दंड संहिता, 1860 की धारा 375 में मुख्य अभिव्यक्ति "बलात्संग" को "उसकी इच्छा के विरुद्ध" के रूप में परिभाषित करती है । इससे यह अभिप्रेत होता है कि आपराधिक कृत्य स्त्री द्वारा प्रतिरोध और विरोध किए जाने के बावजूद किया गया था । भारतीय दण्ड संहिता, 1860 'सम्मति' को सकारात्मक शब्दों में परिभाषित नहीं करती है । किन्तु क्या

बात 'सम्मति' नहीं मानी जा सकती, यह धारा 90 में स्पष्ट किया गया है जो निम्न प्रकार है – "ऐसी सम्मति जो प्रथमतः क्षति के भय के अधीन दी गई हो और दूसरे, तथ्य के भ्रम के अधीन की गई सम्मति पूर्णतया सम्मति नहीं है ।" धारा 90 के प्रथम भाग में इसे स्पष्ट किया गया है । धारा 90 में दो आधार दिए गए हैं जो प्रपीड़न और तथ्य की त्रुटि के समरूप हैं और ऐसे प्रचलित आधार हैं जो हमारे देश और इसी भांति अन्य देशों के विधि-शास्त्रों के अधीन किसी संव्यवहार को दूषित कर सकते हैं । धारा 90 के प्रथम भाग में वर्णन किए गए कारक आहत की दृष्टि से हैं और धारा 90 का दूसरा भाग अभियुक्त की दृष्टि से तत्संबंधी उपबंध अधिनियमित करता है । यह परिकल्पित करता है कि अभियुक्त को इस बाबत ज्ञान या विश्वास करने का कारण है कि आहत द्वारा दी गई सम्मति क्षति के भय या तथ्य के भ्रम के परिणामस्वरूप दी गई है । इस प्रकार दूसरा भाग दोषपूर्ण सम्मति प्राप्त करने वाले व्यक्ति के ज्ञान और युक्तियुक्त विश्वास पर बल देता है । दोनों भागों की अपेक्षा संचयी रूप से संतुष्ट होनी चाहिए । दूसरे शब्दों में न्यायालय को यह देखना है कि क्या सम्मति देने वाले व्यक्ति ने इसे भय या तथ्य के भ्रम के अधीन दिया है और न्यायालय को इस बाबत भी अपना समाधान करना चाहिए कि कृत्य करने वाला व्यक्ति अर्थात् अभिकथित अपराधकर्ता को इस तथ्य का भान था या उसे यह विश्वास करने का कारण था कि भय या भ्रम पैदा किए बिना सम्मति नहीं दी गई होती । धारा 90 की स्कीम नकारात्मक शब्दों में व्यक्त की गई है । अधिकतर विनिश्चयों जिनमें दंड संहिता, 1860 के अधीन अभिव्यक्ति 'सम्मति' के अर्थ पर चर्चा की गई है, में स्ट्राउड्स जूडिशियल डिक्शनरी, जोविट्'स डिक्शनरी ऑन इंग्लिश लॉ, वर्ड्स एण्ड फ्रेज़िस, परमानेन्ट एडीशन और अन्य विधिक शब्द-कोशों में प्रयुक्त गद्यांशों का संदर्भ लिया गया था । स्ट्राउड, सम्मति को "एक ऐसे तर्कसंगत कृत्य, जो सोच-समझ कर किया गया हो, चित्त में अच्छाई और बुराई दोनों का संतुलन करते हुए किए गए कृत्य के रूप में परिभाषित करता है ।" "जोविट ने समान भाषा का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित इसमें और जोड़ा – सम्मति से तीन बातें तात्पर्यित हैं – शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति और उनका स्वतंत्र और गंभीरता से प्रयोग । इसलिए यदि सम्मति डरा-धमका कर, बलपूर्वक, वैचारिक दबाव, आश्चर्य, प्रवंचनां, धोखा या असम्यक् दबाव के अधीन प्राप्त की जाती है, तब यह सोच-विचार कर और चित्त के स्वतंत्र रूप से विचार करने के पश्चात् की गई सम्मति नहीं मानी जाएगी ।" वर्ड्स एण्ड फ्रेजिज़, परमानेन्ट एडीशन, जिल्द 8-क में अमरीकी न्यायालय के कतिपय पुराने विनिश्चय से

निकाले गए निम्नलिखित गद्यांश निम्न प्रभाव के हैं – " ....वयस्क स्त्री को यौन कृत्य की प्रकृति और उसके परिणामों को समझने की क्षमता, बुद्धिमत्तापूर्ण समझने की क्षमता होनी चाहिए, जो सम्मति को गठित करेगी । दांडिक विधि के अधीन बलात्संग को परिभाषित करते समय सम्मति यह अपेक्षा करती है कि उसने कार्य के महत्व और नैतिक गुणवत्ता के आधार पर अपने ज्ञान और बुद्धि का प्रयोग किया हो और उसे प्रतिरोध और सहमति के बीच चयन करने का भी ज्ञान होना चाहिए ।" (पैरा 9, 10 और 11)

जब न्यायालय यह दोहराता है कि किसी और अधिक बात के बिना विवाह का वायदा करना धारा 90 के अर्थान्तर्गत "तथ्य का भ्रम उत्पन्न नहीं करता, यह स्पष्ट किए जाने की आवश्यकता है कि अभियुक्त द्वारा आहत से उससे विवाह करने के आशय या इच्छा रखे बिना उसकी सहमति प्राप्त करने की दृष्टि से जानबूझ कर किया गया कथन सहमति को दूषित करेगा । यदि तथ्यों के आधार पर यह साबित किया जाता है कि वायदा करने के प्रारंभ से ही अभियुक्त वास्तव में उसके साथ विवाह करने का कोई आशय नहीं रखता था और उसके द्वारा किया गया विवाह का वायदा मात्र एक छलावा था, तब आहत द्वारा दृश्यतः दी गई सम्मति अभियुक्त को धारा 375 के द्वितीय खण्ड की परिधि से बचाने के लिए सहायक नहीं होगी । यह एकल मत व्यक्त करने के द्वारा कि एक मिथ्या वायदा संहिता के अर्थान्तर्गत एक तथ्य नहीं है यह नहीं कहा जा सकता कि इस न्यायालय ने भिन्न रूप से विधि को अधिकथित किया है । उपर्युक्त वाक्यांश के बाद व्यक्त किए गए मत भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं । न्यायालय ने यह बात और जोड़ने में पर्याप्त रूप से सावधानी बरती थी कि यह अवधारण करने के लिए कोई निश्चित फार्मूला परिकल्पित नहीं किया जा सकता है कि क्या सम्मति तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई थी "। उदय वाले मामले में निर्णय का पूर्ण रूप से पठन करने पर हम यह नहीं समझते कि न्यायालय ने एक व्यापक प्रतिपादना अधिकथित की थी कि विवाह का एक वायदा करना कभी भी तथ्य का भ्रम गठित नहीं कर सकता । हमारे विचार से यह विनिश्चयाधार नहीं है । वस्तुतः उक्त मामले में एक विनिर्दिष्ट निष्कर्ष निकाला गया था कि प्रारंभ में अभियुक्त के विवाह करने के आशय को नकारा नहीं जा सकता । तथ्य संबंधी सामग्री का विश्लेषण करने का कार्य अभी किया जाना था । किन्तु जैसीकि अपीलार्थी द्वारा सही तौर पर दलील दी गई है कि यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के सादा पठन करने

पर यह दर्शित होता है कि आगे की कार्रवाई किए जाने के लिए कोई अपराध नहीं बनता था तब मामला भिन्न होने पर उच्च न्यायालय के लिए यह उचित रहा होता जैसाकि ऊपर अवेक्षा की गई है कि वह मामले पर विस्तार से चर्चा करता । दृश्यमान रूप से यह भी नहीं किया गया है । इसलिए मामले के गुणागुण पर कोई राय अभिव्यक्त किए बिना हम उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हैं और नए सिरे से विचार किए जाने के लिए इसे मामला प्रतिप्रेषित करते हैं । (पैरा 20 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2007]	(2007) 7 एस. सी. सी. 224 : **हिमाचल प्रदेश राज्य** बनाम **मंगो राम** ;	15
[2005]	(2005) 1 एस. सी. सी. 88 : **दिलीप सिंह** उर्फ **दिलीप कुमार** बनाम **बिहार राज्य** ;	9,21
[2003]	(2003) 4 एस. सी. सी. 88 : **उदय** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	12,20
[1989]	(1889) 2 के. एल. जे. 234 : **विजयन पिल्लई** बनाम **केरल राज्य** ;	15
[1985]	1985 (29) चांसरी डिवीज़न 459: **एडगिन्गटन** बनाम **फिट्ज़मौरिस** ;	19
[1984]	1984 क्रिमिनल लॉ जर्नल 1535 : **जयंती रानी पांडा** बनाम **पश्चिम बंगाल राज्य** ;	19,20
[1975]	1975 महाराष्ट्र लॉ जर्नल 660 : **भीमराव** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	15
[1967]	ए. आई. आर. 1967 राजस्थान 159 : **गोपी शंकर** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	15
[1963]	ए. आई. आर. 1963 मुम्बई 74 : **पर्शोतेन महादेव** बनाम **राज्य** ;	18
[1960]	ए. आई. आर. 1960 मद्रास 308 : **एन्थनी वाला मामला** ;	15

[1958] ए. आई. आर. 1958 पंजाब 123 :
राव हरनारायण सिंह शियोजी सिंह बनाम **राज्य** ; 13

[1913] आई. एल. आर. (1913) 36 मद्रास 453 :
एन. जलादु वाला मामला ; 17

173 ई. आर. 1026 :
आर. बनाम **डे** 14

दांडिक अपीली अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील संख्या 1086.

पटना उच्च न्यायालय द्वारा दांडिक प्रकीर्ण मामला संख्या 35900/2005 में तारीख 6 फरवरी, 2006 को दिए गए आदेश और निर्णय के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री अखिलेश कुमार पांडे, सुदर्शन सरन, सुश्री शेफाली जैन और रंजना नारायण

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री वीरेन्द्र कुमार शर्मा, गोपाल सिंह, मनीश कुमार, अनुकूल राज, ऋतुराज बिसवास, युगल किशोर प्रसाद और बी. एस. राजेश अग्रजीत

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति डा. अरिजीत पसायत ने दिया ।

न्या. डा. पसायत – अनुमति प्रदान की गई ।

2. इस अपील में 2004 के सेशन विचारण संख्या 280 में विद्वान अपर सेशन न्यायाधीश, फास्ट ट्रेक न्यायालय संख्या-3, बक्सर के निर्णय की शुद्धता के प्रश्न के संबंध में पटना उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए आदेश को चुनौती दी गई है जिसके अधीन उन्मोचन के लिए अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया आवेदन नामंजूर किया गया था ।

3. मामले के तथ्य संबंधी पहलू संक्षेप में निम्न हैं :–

प्रत्यर्थी संख्या-2 ने एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (संक्षेप में 'एफ. आई. आर.') यह अभिकथन करते हुए दर्ज कराई कि अभियुक्त अपीलार्थी ने उसके साथ विवाह करने का आश्वासन देने के पश्चात् यौन संबंध बनाए थे । जब यह कुछ समय तक चलता रहा तब इत्तिलाकर्ता को एक मंदिर में

ले जाया गया था जहां देवी माता के सामने अभियुक्त अपीलार्थी ने उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया और विवाह का करार किया गया । यह अभिकथन करते हुए कि अभियुक्त के किसी अन्य महिला के साथ विवाह करने की संभाव्यता थी, एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी । अन्वेषण प्रारम्भ किया गया था और इत्तिलाकर्ता का कथन दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 164 के अधीन अभिलिखित किया गया था, जिसमें यह स्वीकार किया गया था कि सर्वप्रथम अभियुक्त ने इत्तिलाकर्ता को विवाह का वायदा करते हुए उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए थे और इसके पश्चात् उसके साथ विवाह किया था । चूंकि अभियुक्त ने इत्तिलाकर्ता के साथ कभी भी विवाह किए जाने को इनकार किया है और यहां तक कि उसने उसके साथ कोई शारीरिक संबंध होने का भी खण्डन किया था इसलिए इत्तिलाकर्ता प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल करने को बाध्य हुई थी । अन्वेषण के पश्चात् आरोप-पत्र फाइल किया गया था जिसमें यह इंगित किया गया था कि दंड संहिता, 1860 की धाराओं 376 और 406 के अधीन दंडनीय एक अपराध साबित होता है । वर्तमान अपीलार्थी द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 227 के निबंधनानुसार उन्मोचन के लिए फाइल किया गया था । तारीख 21 जुलाई, 2005 के आदेश द्वारा यह नामंजूर किया गया था । अन्य बातों के अलावा निम्न अवेक्षा की गई थी :–

> " ....तथ्यपरक रूप से निर्धन आहत बिनीता कुमारी को इस तथ्य के भ्रम में रखा गया था जैसाकि अभियुक्त द्वारा उसके साथ विवाह का वायदा किया गया था और इस पृष्ठभूमि में अभियुक्त ने उसके साथ संभोग किया है । अभियुक्त ने ऐसा कृत्य अन्य लड़कियों के साथ भी किया था और इसके अतिरिक्त अभियुक्त ने आहत के साथ विवाह के लिए एक इकरारनामा भी किया है । प्रेम पत्रों और इकरारनामे की फोटो प्रति भी मामला डायरी में हैं और यह अभिलेख पर है । मामला डायरी से यह भी स्पष्ट है कि अभियुक्त ने विवाह के मिथ्या वायदे के आधार पर आहत लड़की की सम्मति ली है और इसके अतिरिक्त एक इकरारनामा भी किया है । इसलिए सम्मति स्वतंत्र इच्छा से नहीं ली गई या यह स्वैच्छिक कृत्य नहीं है । इसलिए अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त आधार हैं ।"

4. दंड संहिता, 1860 की धाराओं 376 और 406 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप-पत्र विरचित किए गए हैं । जैसीकि ऊपर अवेक्षा की गई है, आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी जिसने आवेदन को निम्न अभिनिर्धारित करते हुए संक्षिप्त रीति में नामंजूर किया :–

> "विद्वान न्यायाधीश ने अपराध में आलिप्त होने को दर्शित करने वाली पर्याप्त सामग्री पाकर उन्मोचन के लिए उसकी प्रार्थना को नामंजूर किया ।
>
> मैं उसमें कोई त्रुटि नहीं पाता हूं । आवेदन खारिज किया जाता है ।"

5. अपीलार्थी की ओर से विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि विचारण न्यायालय यह अवेक्षा करने में विफल रहा कि महिला ने जो कुछ शारीरिक संबंध बने थे, उन्हें अपनी सम्मति से किया गया स्वीकार किया था । उसके अनुसार उसका अभियुक्त से विवाह हुआ था, ऐसी स्थिति में दंड संहिता, 1860 की धारा 376 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का प्रश्न नहीं उठता ।

6. इसके अतिरिक्त दंड संहिता, 1860 की धारा 406 के घटक पूर्ण रूप से किसी प्रकार लागू नहीं होते हैं । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 164 के अधीन अभिलिखित किए गए कथन का सादा पठन करने पर यह दर्शित होता है कि धारा 406 किसी प्रकार लागू नहीं होती है । दंड संहिता की धारा 406 आपराधिक न्यास भंग के लिए दंड के संबंध में है । धारा 405 में अभिव्यक्ति "आपराधिक न्यास भंग" को परिभाषित किया गया है । यह केवल सम्पत्ति के सौंपे जाने या सम्पत्ति पर अख्तियार सौंपे जाने के संबंध में है । इस मामले में कोई सम्पत्ति का किसी प्रकार से सौंपे जाने का कोई अभिकथन नहीं किया गया है और इसलिए धारा 406 इस मामले में लागू नहीं होती है । उच्च न्यायालय को अपीलार्थी द्वारा किए गए निवेदनों पर चर्चा किए बिना ही आवेदन को संक्षिप्ततः नामंजूर नहीं करना चाहिए था ।

7. राज्य की ओर से विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि यद्यपि दंड संहिता, 1860 की धारा 376 और 406, प्रथमदृष्टया यह प्रतीत होता है कि लागू नहीं होतीं तब भी मामला दंड संहिता की धाराओं 415 और 493 के अधीन आता है । इत्तिलाकर्ता की ओर से विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी है कि चूंकि विवाह के बहाने से और आहत से छल करने के द्वारा अभियुक्त ने उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए थे, यह नहीं कहा जा

सकता है कि सम्मति का घटक वहां है और धारा 376 सही तौर पर लागू की गई है । राज्य और इत्तिलाकर्ता की ओर से विद्वान काउन्सेलों ने यह कथन किया है कि आरोपों में विचारण के दौरान परिवर्तन किया जा सकता है और हस्तक्षेप किए जाने के लिए कोई गुंजाइश नहीं है । अपीलार्थी द्वारा की गई दलीलों की स्वीकार्यता या अन्यथा के संबंध में कोई मत अभिव्यक्त करना उपयुक्त नहीं होगा ।

8. जैसीकि राज्य की ओर से विद्वान काउन्सेल द्वारा सही तौर पर दलील दी गई है कि दंड संहिता,1860 की धारा 376 और 406 प्रथमदृष्टया, यह प्रतीत होता है, कि किसी प्रकार लागू नहीं होतीं । उच्च न्यायालय के लिए यह उपयुक्त होता कि वह स्वीकार्यतः विभिन्न दलीलों पर चर्चा करता और उनकी स्वीकार्यता पर विचार करता । दृश्यमान रूप से ऐसा नहीं किया गया है । यह एक ऐसा मामला नहीं है जहां आवेदन एक संक्षिप्त रीति में खारिज किया जाए ।

9. दंड संहिता,1860 की धारा 375 में मुख्य अभिव्यक्ति "बलात्संग" को "उसकी इच्छा के विरुद्ध" के रूप में परिभाषित करती है । इससे यह अभिप्रेत होता है कि आपराधिक कृत्य स्त्री द्वारा प्रतिरोध और विरोध किए जाने के बावजूद किया गया था । भारतीय दण्ड संहिता, 1860 'सम्मति' को सकारात्मक शब्दों में परिभाषित नहीं करती है । किन्तु क्या बात 'सम्मति' नहीं मानी जा सकती, यह धारा 90 में स्पष्ट किया गया है जो निम्नप्रकार है :–

> "ऐसी सम्मति जो प्रथमतः क्षति के भय के अधीन दी गई हो और दूसरे, तथ्य के भ्रम के अधीन की गई सम्मति पूर्णतया सम्मति नहीं है ।"

धारा 90 के प्रथम भाग में इसे स्पष्ट किया गया है । धारा 90 में दो आधार दिए गए हैं जो प्रपीड़न और तथ्य की त्रुटि के समरूप हैं और ऐसे प्रचलित आधार हैं जो हमारे देश और इसी भांति अन्य देशों के विधि-शास्त्रों के अधीन किसी संव्यवहार को दूषित कर सकते हैं । धारा 90 के प्रथम भाग में वर्णन किए गए कारक आहत की दृष्टि से हैं और धारा 90 का दूसरा भाग अभियुक्त की दृष्टि से तत्संबंधी उपबंध अधिनियमित करता है । यह परिकल्पित करता है कि अभियुक्त को इस बाबत ज्ञान या विश्वास करने का कारण है कि आहत द्वारा दी गई सम्मति क्षति के भय या तथ्य के भ्रम के परिणामस्वरूप दी गई है । इस प्रकार दूसरा भाग दोषपूर्ण सम्मति

प्राप्त करने वाले व्यक्ति के ज्ञान और युक्तियुक्त विश्वास पर बल देता है। दोनों भागों की अपेक्षा संचयी रूप से संतुष्ट होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में न्यायालय को यह देखना है कि क्या सम्मति देने वाले व्यक्ति ने इसे भय या तथ्य के भ्रम के अधीन दिया है और न्यायालय को इस बाबत भी अपना समाधन करना चाहिए कि कृत्य करने वाला व्यक्ति अर्थात् अभिकथित अपराधकर्ता को इस तथ्य का भान था या उसे यह विश्वास करने का कारण था कि भय या भ्रम पैदा किए बिना सम्मति नहीं दी गई होती। धारा 90 की स्कीम नकारात्मक शब्दों में व्यक्त की गई है। जैसाकि इस न्यायालय द्वारा **दिलीप सिंह** उर्फ **दिलीप कुमार** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में मत व्यक्त किया गया है, धारा 90 पर दंड संहिता के प्रयोजनों के लिए सम्मति की निःशेषकारी परिभाषा के रूप में विचार नहीं किया जा सकता है। सम्मति का सामान्य अर्थ और संकल्पना को परिवर्जित करने का आशय नहीं किया गया है।

10. अधिकतर विनिश्चयों जिनमें दंड संहिता, 1860 के अधीन अभिव्यक्ति 'सम्मति' के अर्थ पर चर्चा की गई है, में स्ट्राउड्स जूडिशयल डिक्शनरी, जोविट्'स डिक्शनरी ऑन इंग्लिश लॉ, वर्ड्स एण्ड फ्रेज़िस, परमानेन्ट एडीशन और अन्य विधिक शब्द-कोशों में प्रयुक्त गद्यांशों का संदर्भ लिया गया था। स्ट्राउड, सम्मति को "एक ऐसे तर्कसंगत कृत्य, जो सोच-समझ कर किया गया हो, चित्त में अच्छाई और बुराई दोनों का संतुलन करते हुए किए गए कृत्य के रूप में परिभाषित करता है।" जोविट ने समान भाषा का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित इसमें और जोड़ा :–

> "सम्मति से तीन बातें तात्पर्यित हैं – शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति और उनका स्वतंत्र और गंभीरता से प्रयोग। इसलिए यदि सम्मति डरा-धमका कर, बलपूर्वक, वैचारिक दबाव, आश्चर्य, प्रवंचना, धोखा या असम्यक् दबाव के अधीन प्राप्त की जाती है, तब यह सोच-विचार कर और चित्त के स्वतंत्र रूप से विचार करने के पश्चात् की गई सम्मति नहीं मानी जाएगी।"

11. वर्ड्स एण्ड फ्रेजिज़, परमानेन्ट एडीशन, जिल्द 8-क में अमरीकी न्यायालय के कतिपय पुराने विनिश्चय से निकाले गए निम्नलिखित गद्यांश निम्न प्रभाव के हैं :–

---

[1] (2005) 1 एस. सी. सी. 88.

"........वयस्क स्त्री को यौन कृत्य की प्रकृति और उसके परिणामों को समझने की क्षमता, बुद्धिमत्तापूर्ण समझने की क्षमता होनी चाहिए, जो सम्मति को गठित करेगी ।

दांडिक विधि के अधीन बलात्संग को परिभाषित करते समय सम्मति यह अपेक्षा करती है कि उसने कार्य के महत्व और नैतिक गुणवत्ता के आधार पर अपने ज्ञान और बुद्धि का प्रयोग किया हो और उसे प्रतिरोध और सहमति के बीच चयन करने का भी ज्ञान होना चाहिए ।"

12. **उदय** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले में निम्न मत व्यक्त किया गया था :–

" ....भारत में न्यायालय अधिकतर यह पता लगाने के लिए कि क्या सम्मति स्वैच्छिक थी या यह दूषित थी जिसके कारण यह विधिक सम्मति नहीं है, इन परीक्षणों को अंगीकृत करती है ।"

13. **राव हरनारायण सिंह शियोजी सिंह** बनाम **राज्य**[2] वाले मामले में दंड संहिता, 1860 की धारा 375 के संदर्भ में अभिव्यक्ति "सम्मति" का एक अच्छा विश्लेषण किया गया है । विद्वान न्यायाधीश ने विधि शब्दकोशों में प्रयुक्त उपर्युक्त गद्यांशों से प्रेरणा प्राप्त की है । विद्वान न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किया गया मत निम्नप्रकार है :–

"सम्मति और समर्पण के बीच एक भिन्नता है और प्रत्येक सम्मति में समर्पण अन्तर्वलित होता है किन्तु इसके विपरीत नहीं होता और समर्पण के मात्र एक कृत्य में सम्मति अन्तर्वलित नहीं होती ।"

14. उक्त प्रतिपादना वस्तुतः न्यायमूर्ति कोलरिज द्वारा **आर.** बनाम **डे**[3] वाले मामले में जो कुछ मत व्यक्त किया गया था, उसकी पुनरावृत्ति है जोकि वर्ड्स एण्ड फ्रेजिज़ (परमानेन्ट एडीशन) पृष्ठ 205 पर उत्कथित किया गया था । **हरनारायण** वाले उपर्युक्त मामले में व्यक्त की गई निम्नलिखित टिप्पणियां भी इससे सम्बद्ध हैं :–

"सम्मति सोच-समझकर और विचार करने के पश्चात् किया

---

[1] (2003) 4 एस. सी. सी. 88.

[2] ए. आई. आर. 1958 पंजाब 123.

[3] 173 ई. आर. 1026.

गया एक कृत्य है, अपरिहार्य दबाव के अधीन असहाय समर्पण करने का एकमात्र कृत्य जिसमें विरोध न किया गया हो और समर्पण कर दिया गया हो, उसे सम्मति नहीं माना जा सकता ।"

15. उपर्युक्त विनिश्चय में दिए गए गद्यांश या तो शब्दशः अनुमोदन के साथ या एक संक्षिप्त रूप में पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में उत्कथित किए गए हैं – देखिए, **एन्थनी**[1] वाला मामला, **गोपी शंकर** बनाम **राजस्थान राज्य**[2], **भीमराव** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] और **विजयन पिल्लई** बनाम **केरल राज्य**[4] वाले मामले । इन सभी विनिश्चयों पर उदय वाले उपर्युक्त मामले में विचार किया गया है । **हरनारायण** वाले उपर्युक्त मामले में (जोकि विधि शब्दावलियों से निकाले गए उपर्युक्त सार पर आधारित था) न्यायमूर्ति टेक चन्द द्वारा उल्लिखित की गई दांडिक विधि के संदर्भ में अभिव्यक्ति "सम्मति" के अर्थ और संदर्भ को इस न्यायालय के **हिमाचल प्रदेश राज्य** बनाम **मंगो राम**[5] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की खण्डपीठ के विनिश्चय में दोहराया गया है । इस मामले में निम्न मत व्यक्त किया गया :–

> "आतंक के भय के अधीन शरीर का समर्पण एक सम्मतिपूर्ण यौन कृत्य अर्थान्वयित नहीं किया जा सकता है । धारा 375 के प्रयोजन के लिए सम्मति न केवल सोच-समझ कर कार्य के संबंध में ज्ञान और उसके महत्व और उसके नैतिक गुणवत्ता पर विचार करने के पश्चात् स्वैच्छिक भागीदारी की अपेक्षा करती है अपितु प्रतिरोध और सहमति के बीच पूर्ण रूप से चयन करने के पश्चात् ही इस कृत्य को करने की अपेक्षा करती है । क्या किसी मामले में सम्मति थी या नहीं, यह सभी सुसंगत परिस्थितियों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर ही केवल सुनिश्चित किया जा सकता है ।"

16. तथ्यों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अभियोक्त्री द्वारा प्रतिरोध किया गया था और यौन कृत्य में उसके द्वारा स्वेच्छया से कोई भागीदारी नहीं की गई थी । इसलिए उक्त मामला उपयुक्त रूप से धारा 375 के प्रथम खण्ड के भीतर आता है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1960 मद्रास 308.

[2] ए. आई. आर. 1967 राजस्थान 159.

[3] 1975 महाराष्ट्र ला जर्नल 660.

[4] (1989) 2 के. एल. जे. 234.

[5] (2000) 7 एस. सी. सी. 224.

17. दंड संहिता, 1860 की धारा 90 के विनिर्दिष्ट शब्दों पर चर्चा करना उपयुक्त होगा । हमारे विचार में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा 1913 में **एन.. जलादु**[1] वाले मामले में दिया गया एक उत्कृष्ट विनिश्चय है जिसमें उक्त न्यायालय की न्यायपीठ ने दंड संहिता, 1860 की धारा 361 के अधीन व्यपहरण के अपराध के संदर्भ में धारा 90 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "तथ्य का भ्रम" की परिधि और विस्तार पर विचार किया था । उक्त मामले में द्वितीय अभियुक्त ने लड़की के संरक्षक की सम्मति यह मिथ्या कथन करते हुए प्राप्त की थी कि उसको ले जाने का उद्देश्य एक त्योहार में भाग लेना था । तथापि, त्योहार के पूरा होने के पश्चात् द्वितीय अभियुक्त लड़की को एक अन्य ग्राम में स्थित एक मंदिर में ले गया और उसकी इच्छा के विरुद्ध प्रथम अभियुक्त के साथ विवाह करा दिया । प्रश्न यह उत्पन्न हुआ कि क्या संरक्षक ने तथ्य के भ्रम के अधीन सम्मति दी थी । यह अभिनिर्धारित करते हुए कि कोई सम्मति नहीं दी गई थी न्यायमूर्ति सुन्दर अय्यर ने न्यायपीठ की ओर से कथन करते हुए निम्न मत व्यक्त किया :–

> "हमारा यह मत है कि अभिव्यक्ति 'तथ्य के भ्रम के अधीन' इतनी व्यापक अभिव्यक्ति है कि इसमें ऐसे सभी मामले सम्मिलित हैं जहां सम्मति दुर्व्यपदेशन द्वारा प्राप्त की जाती है ; दुर्व्यपदेशन वह होता है जिसके कारण दी जाने वाली सम्मति के संदर्भ में तथ्यों का भ्रम पैदा किया जाता है । साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3 में दृष्टांत (घ) के अनुसार एक व्यक्ति जिसका कतिपय आशय है एक तथ्य के रूप में माना जाता है । इसलिए यहां वह तथ्य जिसके संबंध में दूसरे और तीसरे अभियोजन साक्षियों को इस तथ्य के संबंध में एक भ्रम सृजित किया गया था यह था कि दूसरा अभियुक्त लड़की के साथ विवाह करना चाहता है । इसी प्रकार के कानून पर विचार करते हुए आर. **बनाम** होपकिन्स (1842) कार एण्ड एम 254 वाले मामले में इंग्लैंड में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि कपट द्वारा अभिप्राप्त की गई सम्मति, किसी अवयस्क को ले जाने को न्यायोचित ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं होगी । देखिए हाल्सबरी लाज़ आफ इंग्लैंड, जिल्द 9, पृष्ठ 623 । स्टीफन्स डाइजैस्ट ऑफ दि क्रिमिनल ला ऑफ इंग्लैंड (छठा संस्करण, पृष्ठ 270) वाले मामले में विद्वान लेखक ने 'सोलह वर्ष से कम आयु की लड़कियों के अपहरण' से संबंधित विधि

---

[1] आई.. एल. आर. (1913) 36 मद्रास 453.

के संदर्भ में यह कहा कि 'इस प्रकार.........यदि ऐसा व्यक्ति जिसकी अभिरक्षा में लड़की है, की सम्मति कपट से ली जाती है, तब इसे ऐसे व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध समझा जाएगा ।' यद्यपि संविदाओं के मामलों में प्रपीड़न या कपट द्वारा अभिप्राप्त सम्मति इससे प्रभावित व्यक्ति के द्वारा शून्यकरणीय कराई जा सकती है, दंड संहिता, 1860 की धारा 90 का प्रभाव यह है कि ऐसी सम्मति दांडिक विधि के अधीन ऐसी बात को न्यायोचित ठहराने के लिए अवलम्ब नहीं ली जा सकती जोकि अन्यथा एक अपराध होगा ।"

18. यह विनिश्चय इस प्रतिपादना के संबंध में एक नज़ीर है कि सम्मति की ईप्सा करने वाले व्यक्ति अर्थात् अभियुक्त के आशय के संबंध में एक दुर्व्यपदेशन, तथ्य के भ्रम को उत्पन्न कर सकता है । मद्रास उच्च न्यायालय का यह मत मुम्बई उच्च न्यायालय की एक खण्ड न्यायपीठ द्वारा **पर्शोतेन महादेव** बनाम **राज्य**[1] वाले मामले में स्वीकार किया गया था । उक्त सिद्धांत को धारा 375 के अधीन उद्‌भूत हुए एक मामले पर लागू करते हुए एक मिथ्या कथन कि अभियुक्त विवाह करना चाहता है, के अनुसरण में दी गई सम्मति तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई सम्मति के रूप में मानी जा सकती है ।

19. इस विनिर्दिष्ट प्रश्न कि क्या विवाह जोकि नहीं किया गया था, के वायदे के आधार पर प्राप्त की गई सम्मति दंड संहिता, 1860 की धारा 375 के प्रयोजन के लिए सम्मति के रूप में मानी जा सकती है, पर कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खण्ड न्यायपीठ द्वारा **जयंती रानी पांडा** बनाम **पश्चिम बंगाल राज्य**[2] वाले मामले में विचार किया गया था । इस मामले के सुसंगत गद्यांश को अन्य अनेक विनिश्चयों में उद्धृत किया गया है । यह **उदय** वाले उपर्युक्त मामले में इस न्यायालय द्वारा अनुमोदन के साथ निदिष्ट किए गए मामले में से एक मामला है । उक्त मामले के विवरणों पर चर्चा किए बिना मामले का सुसंगत सार पैरा 7 में संक्षिप्त रूप से निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है :–

"यहां परिवादी का अभिकथन यह है कि अभियुक्त उसके मकान पर प्रायः आता था और उससे विवाह करने की प्रस्थापना की थी । उसने इस विश्वास के अधीन अभियुक्त से संभोग करने के लिए उसे

1 ए. आई. आर. 1963 मुम्बई 74.

2 1984 क्रिमिनल लॉ जर्नल 1535.

सम्मति दी थी कि अभियुक्त उससे वास्तव में विवाह करेगा । किन्तु हमें एक बात जो महत्वपूर्ण लगती है वह यह है ....कि उसने अपने माता-पिता से इसे क्यों गुप्त रखा यदि वास्तव में उसे उक्त वायदे पर विश्वास था । यह उपधारणा करते हुए कि उसे अभियुक्त पर विश्वास था जब उसने उससे वायदा किया था । यदि उसने कोई वायदा किया भी था तब भी इस संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है कि उस समय अभियुक्त का उक्त वायदे को निभाने का कोई आशय नहीं था । ऐसा हो सकता है कि तत्पश्चात् जब लड़की गर्भवती हो गई हो, तब अभियुक्त ने अन्यथा सोचा हो । किन्तु तब भी परिवादी का पक्षकथन यह है कि अभियुक्त तब तक अपने वायदे से नहीं मुकरा था । इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि तब तक अभियुक्त का परिवादी के साथ विवाह करने का कोई आशय नहीं था यद्यपि उसने जैसाकि अभिकथन किया गया है, कोई वायदा किया था ।"

उपर्युक्त गद्यांश के आगे की चर्चा महत्वपूर्ण है और उसे नीचे यहां उद्धृत किया जा रहा है :-

"भावी अनिश्चित तारीख पर अस्पष्ट कारणों से वायदे को निभाने में विफलता, साक्ष्य की दृष्टि से सदैव ही स्वयंकृत्य के किए जाने के समय तथ्य का भ्रम गठित नहीं करता है । तथ्य के भ्रम के अर्थान्तर्गत आने के लिए, तथ्य की एक तत्काल सुसंगतता होनी चाहिए । मामला भिन्न होता यदि सम्मति यह विश्वास कराते हुए प्राप्त की जाती कि वे पहले से विवाहित थे । ऐसे मामले में सम्मति तथ्य के भ्रम के परिणामस्वरूप की गई कही जा सकती है । किन्तु यहां अभिकथित तथ्य विवाह का वायदा है जो हम नहीं जानते कि कब किया गया था । यदि एक पूर्ण विकसित लड़की, विवाह के वायदे पर यौन संबंध स्थापित करने के लिए सम्मति देती है और सतत् रूप से ऐसे कार्य में तब तक लिप्त रहती है जब तक कि वह गर्भवती नहीं हो जाती तब यह उसकी ओर से एक स्वीकार्य कार्य है और न कि तथ्य के भ्रम द्वारा उत्प्रेरित किया गया एक कृत्य । दंड संहिता, 1860 की धारा 90 को लड़की के कृत्य को माफ करने के लिए और दूसरी ओर व्यक्ति पर दायित्व अधिरोपित करने के लिए ऐसे मामले में लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि न्यायालय इस बाबत आश्वस्त न हो कि प्रारंभ से ही अभियुक्त का उससे विवाह करने का वास्तव में कभी कोई आशय नहीं था ।"

विद्वान न्यायाधीशों ने **एडगिन्गटन** बनाम **फिट्ज़मौरिस**[1] वाले मामले में चांसरी न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट किया और निम्न मत व्यक्त किया :–

"यह विनिश्चय अधिकथित करता है कि एक विशेष कृत्य करने में प्रतिवादी के आशय का दुर्व्यपदेशन तथ्य का गलत कथन हो सकता है और यदि वादी इसके द्वारा भ्रमित होता है तब प्रवंचना की एक कार्रवाई इसके आधार पर की जा सकती है । पृष्ठ 483 पर की गई विशेष मताभिव्यक्ति निम्न प्रभाव की है – एक विद्यमान तथ्य के संबंध में यथार्थ कथन किया गया होना चाहिए । इसलिए तथ्य के एक अयथार्थ कथन को गठित करने के लिए विद्यमान वस्तुस्थिति और उसके संबंध में एक अयथार्थ कथन सुसंगत बन जाते हैं । ऐसे साक्ष्य के अभाव में धारा 90 को इस दलील के समर्थन में सहायता हेतु लागू नहीं किया जा सकता है कि परिवादी की सम्मति तथ्य के भ्रम के आधार पर अभिप्राप्त की गई थी ।"

उपरोक्त विषय पर निर्णयज विधि को निदिष्ट करने के पश्चात् **उदय** वाले उपर्युक्त मामले में निम्न मत व्यक्त किया गया था :–

"इसलिए यह प्रतीत होता है कि न्यायिक मतों में सर्वसम्मति इस मत के पक्ष में है कि अभियोक्त्री द्वारा एक ऐसे व्यक्ति के साथ जिससे वह गहन प्यार करती है, संभोग करने के लिए सम्मति इस वायदे के आधार पर दिए जाने पर कि वह एक पश्चात्वर्ती तारीख पर उससे विवाह कर लेगा, यह तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई सम्मति नहीं कही जा सकती है । एक मिथ्या वायदा संहिता के अर्थान्तर्गत एक तथ्य नहीं है । हम इस मत से सहमत हैं किन्तु हम यह और जोड़ना चाहेंगे कि इस बाबत अवधारण करने के लिए कोई निश्चित फार्मूला नहीं है कि क्या अभियोक्त्री द्वारा संभोग के लिए दी गई सम्मति स्वैच्छिक है या क्या यह तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई है । अंतिम विश्लेषण स्वरूप न्यायालयों द्वारा अधिकथित परीक्षण, सम्मति के प्रश्न पर विचार करते समय न्यायालयों को सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शन उपलब्ध करते हैं किन्तु न्यायालय को प्रत्येक मामले में इसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य पर और निकटवर्ती परिस्थितियों पर किसी निष्कर्ष पर

---

[1] 1885 (29) चांसरी डिवीज़न 459.

पहुंचने से पूर्व विचार करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक मामले के अपने स्वयं के विशिष्ट तथ्य होते हैं जिनका इस प्रश्न पर प्रभाव हो सकता है कि क्या सम्मति स्वैच्छिक थी या यह तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई थी । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भी साक्ष्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि यह साबित करने का भार अभियोजन पर है कि वह अपराध के प्रत्येक घटक को साबित करे जिनमें सम्मति का अभाव एक घटक है ।"

20. उपर्युक्त गद्यांश में दिए गए पहले दो वाक्यांशों पर कुछ स्पष्टीकरण दिए जाने की आवश्यकता है । जब हम यह दोहराते हैं कि किसी और अधिक बात के बिना विवाह का वायदा करना धारा 90 के अर्थान्तर्गत "तथ्य का भ्रम उत्पन्न नहीं करता, यह स्पष्ट किए जाने की आवश्यकता है कि अभियुक्त द्वारा आहत से उससे विवाह करने के आशय या इच्छा रखे बिना उसकी सहमति प्राप्त करने की दृष्टि से जानबूझ कर किया गया कथन सहमति को दूषित करेगा । यदि तथ्यों के आधार पर यह साबित किया जाता है कि वायदा करने के प्रारंभ से ही अभियुक्त वास्तव में उसके साथ विवाह करने का कोई आशय नहीं रखता था और उसके द्वारा किया गया विवाह का वायदा मात्र एक छलावा था, तब आहत द्वारा दृश्यतः दी गई सम्मति अभियुक्त को धारा 375 के द्वितीय खण्ड की परिधि से बचाने के लिए सहायक नहीं होगी । **जयंती रानी पांडा**[1] वाले उक्त मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा वस्तुतः इसी बात पर जोर दिया गया था जिसका अनुमोदन के साथ **उदय**[2] वाले उपर्युक्त मामले में निर्दिष्ट किया गया था । कलकत्ता उच्च न्यायालय ने पूर्वतर कथन की गई इस प्रतिपादना को अंत में यह जोड़ते हुए सही ठहराया कि – "जब तक कि न्यायालय इस संबंध में आश्वस्त न हो सके कि प्रारंभ से ही अभियुक्त वस्तुतः कभी भी उससे विवाह करने का आशय नहीं रखता था।" अगले पैरा में उच्च न्यायालय ने चांसरी न्यायालय के महत्वपूर्ण विनिश्चय को निर्दिष्ट किया जिसमें यह अधिकथित किया गया था कि एक विशेष कृत्य करने में प्रतिवादी के आशय का एक गलत कथन, तथ्य का एक अयथार्थ कथन गठित करेगा और इसके आधार पर प्रवंचना की कार्रवाई की जा सकती है । **एन. जलादु**[3] वाले मामले में (देखिए उपर्युक्त उत्कथित

[1] 1984 क्रिमिनल लॉ जर्नल 1535.

[2] (2003) 4 एस. सी. सी. 88.

[3] आई. एल. आर. (1913) 36 मद्रास 453.

गद्यांश) मद्रास उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा भी यही मत अपनाया गया था । यह एकल मत व्यक्त करने के द्वारा कि एक मिथ्या वायदा संहिता के अर्थान्तर्गत एक तथ्य नहीं है " यह नहीं कहा जा सकता कि इस न्यायालय ने भिन्न रूप से विधि को अधिकथित किया है । उपर्युक्त वाक्यांश के बाद व्यक्त किए गए मत भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं । न्यायालय ने यह बात और जोड़ने में पर्याप्त रूप से सावधानी बरती थी कि यह अवधारण करने के लिए कोई निश्चित फार्मूला परिकल्पित नहीं किया जा सकता है कि क्या सम्मति तथ्य के भ्रम के अधीन दी गई थी । **उदय** वाले मामले में निर्णय का पूर्ण रूप से पठन करने पर हम यह नहीं समझते कि न्यायालय ने एक व्यापक प्रतिपादना अधिकथित की थी कि विवाह का एक वायदा करना कभी भी तथ्य का भ्रम गठित नहीं कर सकता । हमारे विचार से यह विनिश्चयाधार नहीं है । वस्तुतः उक्त मामले में एक विनिर्दिष्ट निष्कर्ष निकाला गया था कि प्रारंभ में अभियुक्त के विवाह करने के आशय को नकारा नहीं जा सकता ।

21. **दिलीप सिंह**[1] वाले उपर्युक्त मामले में इन पहलुओं पर विस्तृत रूप से चर्चा की गई है । तथ्य संबंधी सामग्री का विश्लेषण करने का कार्य अभी किया जाना था । किन्तु जैसी कि अपीलार्थी द्वारा सही तौर पर दलील दी गई है कि यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के सादा पठन करने पर यह दर्शित होता है कि आगे की कार्रवाई किए जाने के लिए कोई अपराध नहीं बनता था तब मामला भिन्न होने पर उच्च न्यायालय के लिए यह उचित रहा होता जैसाकि ऊपर अवेक्षा की गई है कि वह मामले पर विस्तार से चर्चा करता । दृश्यमान रूप से यह भी नहीं किया गया है । इसलिए मामले के गुणागुण पर कोई राय अभिव्यक्त किए बिना हम उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हैं और नए सिरे से विचार किए जाने के लिए इसे मामला प्रतिप्रेषित करते हैं ।

22. तद्नुसार अपील का निपटारा किया गया ।

अपील का तद्नुसार निपटारा किया गया ।

अनू.

---

[1] (2005) 1 एस. सी. सी. 88.

नवीनतम प्रकाशन

विधिशास्त्र

लेखक : डा. शिवदत्त शर्मा

विधि साहित्य प्रकाशन, विधायी विभाग, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित प्रस्तुत पुस्तक "विधिशास्त्र" कुमाऊं विश्वविद्यालय के विधि संकाय में उपाचार्य डा. शिवदत्त शर्मा द्वारा लिखी गई है । इस पुस्तक में लेखक ने पाठ्य सामग्री को सूत्रबद्ध तरीके से पिरोया है तथा सभी लब्ध प्रतिष्ठ विधिशास्त्रियों की कृतियों से प्रेरणा लेकर तथा भारतीय दृष्टिकोण से समतुलनात्मक विश्लेषण करके इसे लिखा है और साथ ही कुछ नए विषयों अर्थात् विधिशास्त्र की चुनौतियां तथा भविष्य में कंप्यूटर का विधि के क्षेत्र में उपयोग आदि को सम्मिलित किया है । लेखक ने विषय के विभिन्न पहलुओं को दृष्टांतों और उदाहरणों तथा निर्णीत मामलों की सहायता से भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

यह पुस्तक विधि के विद्यार्थियों, न्यायविदों, विधि के प्राध्यापकों सहित जनसाधारण के लिए भी अत्यंत उपयोगी है ।

कुल पृष्ठ : 535 **कीमत : 580/- रुपए**

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवानदास मार्ग,

नई दिल्ली - 110 001

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

नवीनतम प्रकाशन

मानव अधिकार

लेखक : **डा. शिवदत्त शर्मा**

मानव अधिकार विषय आज सामाजिक चेतना का प्रतीक बन गया है । आम नागरिक अपने मानवाधिकारों के प्रति सजग हो इसलिए यह आज अंतरराष्ट्रीय स्तर और राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय है और इसके संरक्षण और संवर्धन के लिए अनेक प्रयास किए जा रहे हैं ।

विधि साहित्य प्रकाशन, विधायी विभाग, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक में मानव अधिकारों की प्रकृति, विकास, महत्व और संकल्पना का ब्यौरेवार विवेचन किया गया है । मूल रूप से हिन्दी में लेखन के कारण यह पुस्तक पाठक को भाषा की दृष्टि से सहज, सुबोध और प्रवाहमयी प्रतीत होगी ।

'मानव अधिकार' विषय अब एलएल.बी. के पाठ्यक्रम में अनिवार्य विषय के रूप में सम्मिलित कर लिया गया है । प्रस्तुत कृति इसी दिशा में एक प्रयास है ।

लेखक डा. शिव दत्त शर्मा, विधि संकायाध्यक्ष, कुमाऊं विश्वविद्यालय, ने 'मानव अधिकार' नामक इस पुस्तक में अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में मानव अधिकार का तुलनात्मक विश्लेषण किया है तथा भारत के संविधान के साथ-साथ विभिन्न अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशनों, संधियों आदि का विवेचन प्रवाहपूर्ण भाषा में किया है । लेखक का यह योगदान और प्रयास विधि-क्षेत्र में सराहनीय है । विधि विद्यार्थियों, अधिवक्ताओं, न्यायविदों के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है ।

कुल पृष्ठ : 365 **मूल्य : 120/- रुपए**

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवानदास मार्ग,

नई दिल्ली - 110 001